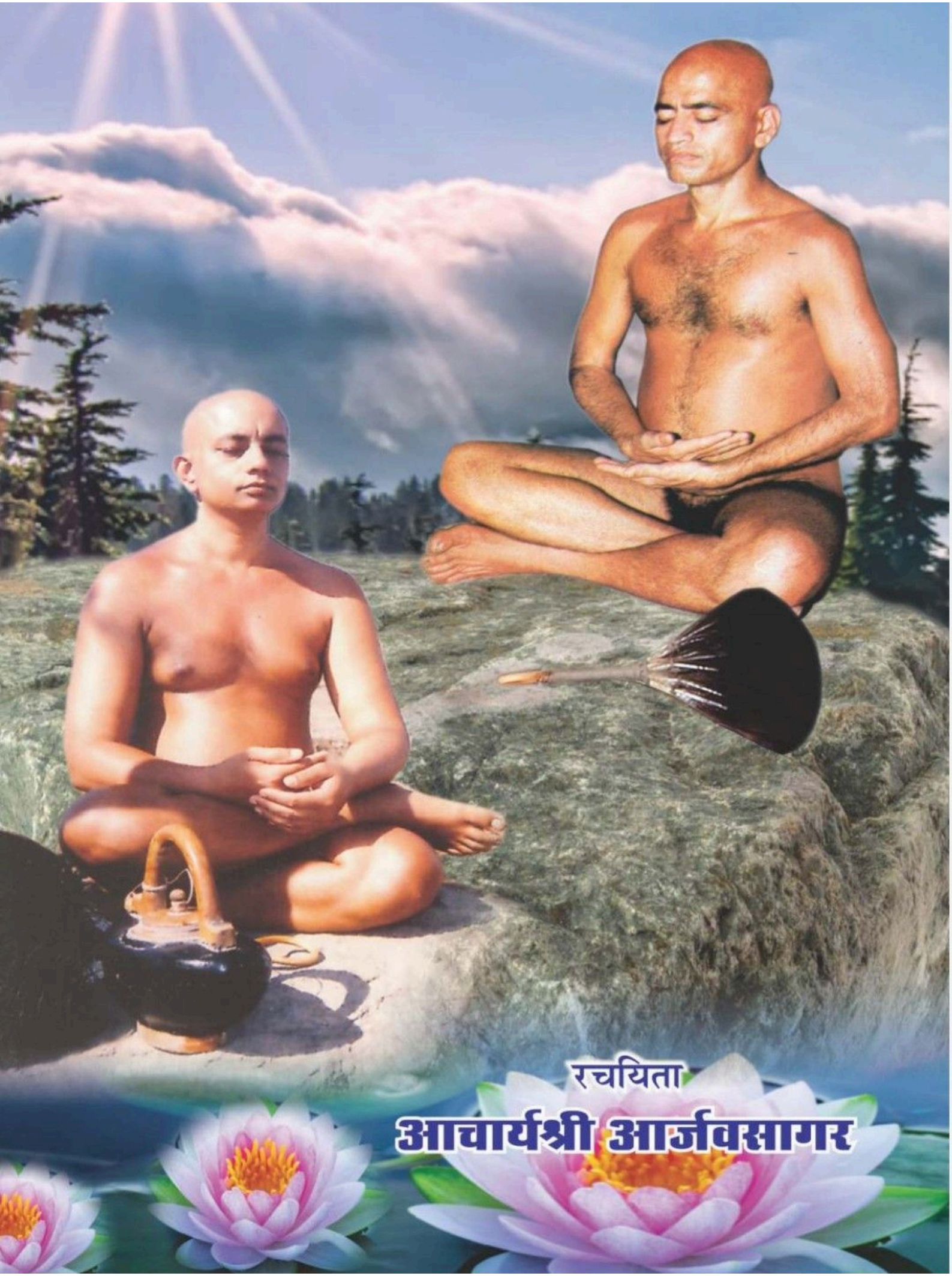
रचयिता
आचार्यश्री आर्जवसागर

पंच-धारणाएँ

79. पंच तरह की धारणा, करता ध्यानी होय।
पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल, और तत्त्व संजोय॥

पृथ्वीधारणा, अग्निधारणा, वायुधारणा, जलधारणा और तत्त्वधारणा ऐसी पंच-धारणाएँ सम्यक्ध्यान के लिए सुयोग्य मानी गईं हैं; इनका विधिवत् अभ्यास करने वाला योगी सम्यक्-ध्यानी कहलाता है।

पृथ्वीधारणा

80. मध्य-लोक है क्षीर-सम, सागर शान्त स्वरूप।
जम्बूद्वीप सहस्रदल, इक-लख योजन रूप॥

अत्यन्त-शान्ति स्वरूप क्षीरसागर-समान मध्यलोक में एक-हजार पाँखुड़ी-सदृश एक-लाख योजन वाला जम्बूद्वीप स्थित है।

❖

81. वहाँ कर्णिका-मध्य में, श्वेतासन-शुभ रूप।
जहाँ विराजित आतमा, बन निर्ग्रन्थ स्वरूप॥

जम्बूद्वीप के बीचोंबीच निन्यानवे-हजार चालीस-योजन ऊँची कर्णिका के मध्य शुभ रूप धवल-आसन पर अपनी-आत्मा निर्ग्रन्थ रूप में विराजमान है ऐसा चिंतवन करना "पृथ्वीधारणा" कहलाती है।

अग्निधारणा

82. निज-नाभि में ऊर्ध्वमुख, स्वर्णिम-दल शुभ-मान।
सोलह-पांखुड़ि स्वर बसें, मध्य-बसे हूँ जान॥

अपनी-नाभि से ऊर्ध्वमुखी स्वर्णमयी एक कमल उत्पन्न हुआ है जिस कमल की सोलह-पांखुड़ियों पर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ऐसे सोलह-स्वर क्रमशः विराजित हैं और कर्णिका के ऊपर बीचों-बीच 'हूँ' अक्षर विराजित है ऐसा जानो।

❖

83. अधो-मुखी हिय-मध्य में, कमल विराजित सोह।
अष्ट-पाँखुड़ी कर्म की, दहे ध्यान हूँ होह॥

अपने हृदय के मध्य में अधोमुखी एक कमल शोभित है जिस कमल की अष्ट-पाँखुड़ियों पर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय नामक अष्ट-कर्म क्रमशः चिपके हुए हैं तथा बीचों-बीच कर्णिका पर विराजित 'हूँ' अक्षर अपने अंदर स्थित 'र्' अक्षर से और नाभि-कमल के मध्यवर्ती 'हूँ' के अंदर स्थित 'र्' अक्षर का संयोग एवं उन दोनों 'र्' का पारस्परिक घर्षण शुक्ल-ध्यानाग्नि प्रकट कर देता है और हम जैसे-जैसे एक-आत्मतत्त्व के स्वरूप के विषय की गहराई के चिन्तन में डूबते चले जाते हैं, वैसे-वैसे हमारा ध्यान उत्तम से उत्तमता की ओर बढ़ता चला जाता है और ध्यान-रूपी अग्नि हृदय-स्थित कमल की पाँखुड़ियों पर चिपके (बंधे) हुए कर्मों को शीघ्र ही अन्तर्मुहूर्त्त मात्र में जला कर नष्ट कर देती है। इस तरह विचार करना "अग्निधारण" कहलाती है।

❖

84. आतम में प्रकटें जहाँ, गुण-अनन्त-अभिराम।
सिद्ध बने परमात्मा, सिद्ध हुए सब-काम॥

अष्ट-कर्म नष्ट होते ही आत्मा केवलज्ञानी, शुद्ध, बुद्ध परमवीतरागी सिद्ध-परमात्मा बन जग में शोभा पाता है और उनकी आत्मा में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त शक्ति आदि अनन्त शुभ-गुण प्रकट हो जाते हैं तथा वे सिद्ध-परमेष्ठी सदा के लिए कृतकृत्य हो जाते हैं।

❖

85. घृत जैसे महके; पुनः, नहीं दुग्ध में आय।
भव में न अवतार ले, शिव में आतम भाय॥

दुग्ध से प्रकट हुआ घृत जैसे पुनः दुग्ध रूप अवस्था में लौटकर नहीं जाता हुआ अपनी सुगन्ध को चहुँ ओर फैलाता है वैसे ही संसार-समुद्र से पार हुए सिद्ध-परमात्मा अनंतकाल में कभी भी मोक्षपद या सिद्ध-लोक से लौट कर संसार में पुनर्जन्म नहीं धारण करते, बल्कि सदा वे लोक-शिखर पर ही सुशोभित होते हैं।

❖

86. सकल-ज्ञेय-ज्ञायक बने, झलकें सभी पदार्थ।
दर्पण-वत् आदर्श हैं, गुण-अनन्त-परमार्थ॥

व्यवहार-दृष्टि से विश्व के सभी पदार्थों को जानने वाले सर्वज्ञ तथा निश्चय-दृष्टि से दर्पणवत् जिनकी आत्मा में विश्व के सभी पदार्थ युगपत् झलकने लग जाते हैं और वे आत्मज्ञ-सिद्ध-परमात्मा अपने अनन्त-गुणों के आनंद में लीन रहते हैं।

वायु और जलधारणा

87. कर्मराख को तीव्र वह, मारुत करती साफ।
मेघों के उस नीर से, थल भी धुलता आप॥

ध्यानाग्नि से भष्म हुए अष्ट-कर्मों की राख को तीव्र तूफानी गतिमान वायु उड़ाकर दूर कर देती है और मूसलाधार वर्षात् के द्वारा मेघों का जल राख के बने दाग को धोकर साफ कर डालता है ऐसा शुभ-चिन्तवन करना क्रमशः ''वायु'' और ''जलधारणा'' कहलाती है।

तत्त्वधारणा

88. यह शुद्धात्म अजीव से, भिन्न-सिद्ध है जीव।
परम-तत्त्व दर्शन तथा, ज्ञान सहित मम-जीव॥

यह शुद्धात्मा शरीर, वस्त्र, अलंकार आदिक से भिन्न दर्शन तथा ज्ञान सहित परमतत्त्व स्वरूप है ऐसा चिन्तवन करना ''तत्त्वधारणा'' कहलाती है।

रूपस्थध्यान

89. आत्म-सर्व-चिद्रूप है, ज्ञान-मयी सु-विचार।
ध्यान रहा रूपस्थ यह, यतिओं को स्वीकार॥

निज-आत्मा सम्पूर्ण चैतन्य-ज्ञान-मय है ऐसा विचार करना रूपस्थ-ध्यान मुनियों द्वारा मान्य कहा गया है।

❖

90. अनन्त-ज्ञान भण्डार-मय, आतम-गुण चिद्रूप।
कर्म-मेघ हटते जहाँ, बने केवली रूप॥

अनन्त ज्ञानादिक का खजाना रूप आत्मा चैतन्य-गुणों के उदय और कर्म रूपी मेघ-पटलों के हटने पर, कैवल्य-अवस्था का स्वामी बन जगत् में भासित-शोभित होता है। ऐसा विचार करना ''रूपस्थ-ध्यान'' कहलाता है।

रूपातीतध्यान

91. निष्कलंक-त्रयकाल-निज, शुद्ध-निरंजन एक।
चिन्तन रूपातीत है, ध्यान करें मुनि नेक॥

कर्म-कलंक से रहित त्रिकालों में अपनी आत्मा शुद्ध-निरंजन अकेली होती है ऐसा चिन्तवन कर मुनिराज श्रेष्ठ रूपातीत-ध्यान करते हैं।

❖

92. चिदानन्द-मय पूर्ण यह, शुद्धातम गुण-खान।
अमूर्त-नित्य-परमात्मा, ध्यावें सिद्ध-समान॥

अपनी शुद्धात्मा चैतन्य के आनंदमयी गुणों की खजाना है। अमूर्त शाश्वत-परमात्मा सिद्धों के समान है। ऐसा मुनि लोग ध्यान करते हैं, इसी का विचार करना चाहिए।

धर्मध्यान के स्वामी

93. चौथे उस गुणथान से, सप्तम तक ये ध्यान।
ध्यान; विचय संस्थान यह, मुनिवर के पहचान॥

असंयत-सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ-गुणस्थान से लेकर अप्रमत्त-संयत नामक सातवें-गुणस्थान तक धर्मध्यान करने की योग्यता मानी गई है, लेकिन संस्थान-विचय धर्मध्यान केवल निर्ग्रंथ-दिगम्बर-आत्मध्यानी मुनियों को ही होना संभव है; ऐसा जानकर उसकी प्राप्ति का पूर्ण पुरुषार्थ करो।

शुक्ल-ध्यान का स्वरूप

पृथक्त्ववितर्कवीचार

94. अर्थ, व्यंजन, योग का, परिवर्तन जब होय।
श्रुत में ऊहापोह हो, शुक्ल-ध्यान-अथ होय॥

पृथक्त्व अर्थात् भेद रूप द्रव्य, वितर्क अर्थात् श्रुत (ज्ञान) के साथ रहना, और वीचार अर्थात् अर्थ (पदार्थ), व्यंजन (पर्याय) एवं योग (मन-वचन-काय) ऐसा इस प्रथम शुक्ल ध्यान का शाब्दिक अर्थ होता है। जब मुनिवर जीवाजीवादिक अनेक भेदों सहित द्रव्यों को मन, वचन और काय इन तीनों योगों के द्वारा ध्याते हैं तब पृथक्त्व होता है। मुनिवर का श्रुत-ज्ञान में (अंग सहित नवम पूर्व आदिक ज्ञान में) चिंतवन-मंथन चलता है तब वितर्क कहलाता है। इसी तरह एक अर्थ (पदार्थ) को छोड़कर भिन्न अर्थ का ध्यान करना और एक व्यंजन (पर्याय) या द्रव्य की अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था का ध्यान करना तथाहि मन से चिन्तवन करके वचन से चिन्तवन करना; पुनः काययोग से चिन्तवन करना; इस तरह का परिवर्तन (संक्रमण) यह वीचार कहलाता है। इन अर्थ, व्यंजन और योगों के परिवर्तन से यह ध्यान तीन प्रकार रूप होता है। ऐसे ज्ञान (श्रुत) के विषय में चिंतवन-मंथन करते-करते योगी एकाग्रता से शुक्ल-ध्यान को ध्याते हैं।

एकत्ववितर्क अविचार

95. एक-योग में थिर रहे, श्रुत का मन्थन होय।
शुक्ल-ध्यान फिर दूसरा, केवलज्ञानी होय॥

मन, वचन और काय में से किसी एक-योग के द्वारा मुनिवर जब षड् द्रव्यों में से किसी एक-द्रव्य का, नव-पदार्थों में से एक-पदार्थ का और व्यंजन या अर्थ-पर्यायों में से किसी एक-पर्याय का श्रुतज्ञान के चिंतन-मंथन के साथ जो ध्यान करते हैं उसे एकत्व-वितर्क अवीचार ध्यान कहा जाता है। इस ध्यान में अर्थ, व्यंजन और योगों का परिवर्तन नहीं होता अर्थात् बड़ी स्थिरता होती है। इस ध्यान की यह विशेषता है कि इस ध्यान के अन्तर्मुहूर्त्त काल में मुनिवर अपनी आत्मा में अनादिकाल से बंधे कर्म जो कि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय इन चार घातियाँ कर्मों का क्षय (नाश) करके केवलज्ञान की प्राप्ति करके अरिहंत-भगवान के पद को प्राप्त कर लेते हैं।

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती

96. काययोग बस जब रहे, ना प्रतिपाती होय।
केवलज्ञानी-आत्मा, परमातम-सम जोय॥

केवली-भगवान के जीवन के अंत में होने वाला परमात्मा की उत्कृष्ट-समता देने वाला ध्यान जिसमें काययोग की क्रिया भी सूक्ष्म हो जाती है वह सूक्ष्म-क्रिया-अप्रतिपाती (अप्रतिपाती अर्थात् निचली अवस्था में

लौटकर नहीं आने देने वाला) ध्यान कहलाता है। यह अवितर्क और अविचार है अर्थात् श्रुत के अवलम्बन से रहित है अत: अवितर्क है और इसमें अर्थ, व्यंजन तथा योगों का संक्रमण नहीं है अत: अविचार है।

व्युपरतक्रियानिवृत्ति

97. बने अयोगी आतमा, सर्व-निवृत्ति होय।
सर्वकर्म बिनसें तभी, क्षण में मुक्ति होय॥

सम्पूर्ण योगों या काययोग का भी निरोध हो जाने से जो अयोग-केवली-परमात्मा का ध्यान है वह **व्युपरतक्रियानिवृत्ति** या **अनिवृत्ति-निरुद्ध-योग** अथवा **समुच्छिन्न क्रिया** नामक शुक्लध्यान कहलाता है। यह ध्यान सभी ध्यानों में अन्तिम और उत्कृष्ट होने से अनुत्तर है, परिपूर्णतया स्वच्छ-उज्ज्वल होने शुक्ल है, यह मणि के दीप की शिखा के समान होने से पूर्णतया अविचल है। तथाहि तृतीयशुक्ल-ध्यान की भांति अवितर्क, अवीचार भी है। ऐसे उत्कृष्ट-ध्यान के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर आत्मा क्षणमात्र में मोक्ष-सुख को प्राप्त कर लेती है।

चौदहवें गुणस्थान का काल

98. गणधर के स्वर-पंच-लघु, उच्चारण में काल।
जितना, उतना है इसी, गुणस्थान का काल॥

गणधर-परमेष्ठी के लिए 'अ', 'इ', 'उ', 'ऋ', 'लृ' इन पंच ह्रस्व-स्वरों के उच्चारण में जितना अल्पकाल (जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त) लगता है, उतना

ही इस चौदहवें-गुणस्थान का काल होता है जिसमें अयोग-केवली भगवान मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

शुक्लध्यान के गुणस्थान

99. अष्टम-गुणस्थान से, प्रथम-शुक्ल हो ध्यान।
बारहवें-गुणथान में, होय दूसरा जान॥

अपूर्वकरण नामक आठवें-गुणस्थान से पृथक्त्ववितर्क-वीचार नामक प्रथम शुक्ल-ध्यान प्राप्त होता है। क्षीणकषाय नामक बारहवें-गुणस्थान में एकत्ववितर्क-अवीचार नामक दूसरा शुक्ल-ध्यान प्राप्त होता है।

❖

100. तेरहवें गुणथान में, तीजा-शुक्ल सु-ध्यान।
चौदह में चौथा-शुकल, फिर हो मोक्ष-महान॥

सयोग-केवली नामक तेरहवें-गुणस्थान में सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाती नामक तृतीय शुक्ल-ध्यान कहा जाता है और अयोग-केवली नामक चौदहवें-गुणस्थान में व्युपरतक्रिया निवृत्ति नामक चतुर्थ शुक्ल-ध्यान कहा जाता है; इस अन्तिम शुक्ल-ध्यान के उपरान्त आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

अन्तिम मंगल

101. मुनिवर का जीवन सदा, ज्ञान, ध्यान में लीन।
आर्जव-मय उपयोग से, बनें स्वयं-स्वाधीन॥

मुनिवर का जीवन हमेशा ज्ञान, ध्यानादि तपों में लीन रहता है। आर्जव अर्थात् सरलता-मय भाव से वे निज-आत्मा में स्वाधीन-स्वाश्रित सुखी बने रहते हैं।

❖

102. सागर वह अध्यात्म का, जिनके अन्दर पूर।
रचित शुद्ध-निज-आत्म में, भव-वांछा से दूर॥

जिन मुनिवर के हृदय में अध्यात्म का सागर लबालब भरा रहता और वे मुनिवर सांसारिक-इच्छाओं से विलग रहते हुए अपनी शुद्धात्मा में लीन रहते हैं।

❖

103. सम्यक् -निज-उपयोग हो, शुभ अरु शुद्ध-महान।
ध्यान जगे वह शुक्ल जब, मिलता केवलज्ञान॥

समीचीन (सम्यग्दृष्टि) आत्मा के धार्मिक-क्रिया रूप शुभोपयोग के द्वारा मुनियों को प्राप्त होने वाले महान शुद्धोपयोग की जब प्राप्ति होती है और जब शुक्लध्यान उत्पन्न होता है तब उसके फलस्वरूप उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति भी हो जाती है।

❖

104. शतक -वर्ष नहिं चाहिए, अन्तर्मुहूर्त्त मात्र।
पूर्ण-लीन निश्चल जहाँ, मुनिवर मोक्ष सु-पात्र॥

संसार या कर्मों से मुक्ति पाने के लिए शताधिक आदि वर्षों का ही होना आवश्यक नहीं बल्कि अन्तर्मुहूर्त्त काल मात्र में ही मुनिवर अगर पूर्ण निश्चल-एकाग्र वृत्ति से अपनी आत्मा में लीन हो जाते हैं तो उन्हें सम्पूर्ण कर्मों से छुटकारा पाने रूप मुक्ति या मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

❖

105. अष्टापद व सम्मेदगिरि, चम्पापुर, गिरनार।
पावापुर को ध्याय जो, शीघ्र करे भव-पार॥

भ. आदिनाथ तीर्थंकर एवं अनेक मुनीश्वरों का मोक्षस्थान अष्टापद-कैलाश पर्वत, भ. अजितनाथ आदि वर्तमान चौबीसी के बीस तीर्थंकरों एवं अनन्तानन्त मुनीश्वरों का मोक्षस्थान सम्मेदशिखर, भ. वासुपूज्य तीर्थंकर का मोक्षस्थान चम्पापुर (मन्दारगिरि), भ. नेमिनाथ तीर्थंकर एवं अनेक मुनीश्वरों का मोक्षस्थान गिरनार (ऊर्जयन्तगिरि) और अन्तिम तीर्थंकर भ. महावीर का मोक्षस्थान पावापुरी है उसका जो ध्यान करता है वह भव्यात्मा शीघ्र ही संसार-समुद्र से पार हो जाता है।

❖

106. तीन-गुप्ति में लीन हो, मन-वच-तन को रोक।
करें ध्यान शिव-मोक्ष पा, जन्म, मृत्यु ना शोक॥

पंच-मिथ्यात्व, पंच-पाप एवं पंच-इन्द्रिय के विषयों की ओर से मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को रोककर तीन-गुप्तियों के द्वारा आत्मलीनता पूर्वक सम्यक्-ध्यान करने से जहाँ जन्म, मृत्यु और शोक नहीं ऐसा मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रशस्ति

107. सुप्रतिष्ठित-केवली, मोक्ष गये वह थान।
गोपगिरि पावनधरा, जग से पूज्य महान॥

ग्वालियर नगर के निकट जिस पर्वत से सुप्रतिष्ठित-केवली मोक्ष (निर्वाण) को प्राप्त हुए ऐसा स्थान गोपगिरि (गोपाचल) जगत् में महान पूज्य और पावन-धरा रूप माना गया है।

❖

108. गोपाचल यह ग्वालियर, सिद्धांचल जहँ तीर्थ।
वृषभांचल, त्रिशलागिरि, नेमिगिरि भी तीर्थ॥

ग्वालियर नगर के जिस पवित्र पर्वत पर पूर्वदिशा की गुफाओं में जहाँ ब्यालीस फीट ऊँचे पार्श्वनाथ-भगवान विराजमान हैं ऐसा गोपाचल-तीर्थ स्थित है। दक्षिण और पश्चिम दिशा के बीच जहाँ भगवान महावीर के पंच कल्याणक के दृश्य व वीतराग-प्रतिमाएँ तथा त्रिशलामाता की सोलह स्वप्नों को दर्शाने वाली प्रतिमा बनी हुई है ऐसी त्रिशलागिरि नाम से प्रसिद्ध-स्थल है। पश्चिम-दिशा में जहाँ चौबीस फीट ऊँचे नमिनाथ-भगवान आदि की जिन-प्रतिमाएँ विराजमान हैं और इसी तरह ईशान-दिशा में जहाँ नेमिनाथ भगवान आदि की प्रतिमाएँ बनाई गयी थीं ऐसा नेमिगिरि-तीर्थ स्थित है तथाहि उरवाही दरवाजे से प्रवेशकर ऊपर की ओर बढ़ते हुए पहाड़ के हृदय-सम बीचों-बीच चौरासी फीट ऊँचे भगवान आदिनाथ (वृषभदेव) की मूर्ति स्थित है।

❖

109. वर्धमान-मंदिर किला, सहित सु-पर्वत नाथ।
ग्वालियर में साठ जिन, मंदिर नमते माथ॥

सुप्रतिष्ठित केवली के सिद्धक्षेत्र गोपगिरि (गोपाचल) पर बने प्राचीन वर्धमान जिनालय के चारों ओर बने अर्वाचीन किले के परिसर में गुफाओं और मंदिरों में विराजमान व कुछ प्रकृति आदि से छिन्न-भिन्न; पाषाण से निर्मित पंद्रह हजार दिगम्बर-प्रतिमाओं के साथ पवित्रपर्वत और ग्वालियर शहर में स्थित स्वर्ण-मंदिर आदि साठ दिगम्बर जैन मंदिरों को हम वीतराग-भाव से सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं।

❖

110. वर्ष वीर-निर्वाण का, पच्चीस सौ चौतीस।
'सम्यक्-ध्यान शतक' लिखा, काव्य बनावे ईश॥

वीर-निर्वाण संवत् पच्चीस सौ चौंतीस के वर्षायोग में यह ''सम्यक्-ध्यान-शतक'' नामक काव्य (समीचीन-ध्यान-साधना हेतु) लिखा गया जो काव्य ध्यान-कर्ता को सिद्ध पद प्राप्त करावे।

❖

111. मंदिर नया-बजार में, पार्श्व-प्रभो हैं नेक।
वर्षायोग में काव्य यह, रचा सु-पूर्ण विवेक॥

ग्वालियर नगर के नया-बाजार स्थित मंदिर में विराजमान पार्श्वनाथ-भगवान की मनोज्ञ-प्रतिमा के चरणों में बैठकर पावन-वर्षायोग में आत्म-ध्यान की प्रसिद्धि के लिए ज्ञान-ध्यान रूप विवेक को धारण करते हुए यह काव्य रचित किया गया।

❖

112. पार्श्व-प्रभो की शरण वा, विद्या-गुरु आशीष।
पूर्ण हुआ यह काव्य शुभ, पढ़ें बनें शिव-ईश॥

भगवान पार्श्वनाथ की शरण एवं आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के आशीष से यह 'सम्यक्-ध्यान-शतक' शुभ-काव्य संपूर्ण हुआ, इस काव्य को सभी लोग (पुनः-पुनः) पढ़कर सिद्ध-पद को प्राप्त करें।

❖

113. इक सौ तेरा पद्य हैं, 'ध्यान शतक' में पूर्ण।
ध्यान करें निज-एक सो, तेरा है सम्पूर्ण॥

इस 'ध्यान-शतक' काव्य में एक सौ तेरह पद्य लिखे गये हैं और जो एक अर्थात् एकमात्र आत्मा ही तेरा है उस आत्मा का ध्यान करने से सम्पूर्णता की प्राप्ति या सम्पूर्ण-सुख रूप सिद्ध-पद की प्राप्ति हो जाती है।

*****

[यह सम्यक्-ध्यान-शतक का हिन्दी गद्यानुवाद; पद्यों के रचयिता द्वारा ही वीर-निर्वाण संवत् पच्चीस सौ तेतालीस में हुए पुरवा-जबलपुर (म.प्र.) के वर्षायोग में सम्पन्न हुआ]

ध्यान हेतु भावनाएँ

सद्भावनाओं के प्रकार :- पच्चीस, सोलह, बारह, सात, चार, तीन, दो और एक इस तरह कुल 70 प्रकार की भावनाएं होती हैं।

पच्चीस-भावनाएँ

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग इन पाँच व्रतों की पाँच-पाँच भावनाएँ होती हैं।

अहिंसाव्रत की पाँच-भावनाएँ

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च।त.सू. 7/4

1. **वाङ्गुप्ति :** वचन की प्रवृत्ति को रोकना।
2. **मनोगुप्ति :** मन की प्रवृत्ति को रोकना।
3. **ईर्या समिति :** चलते समय आगे की चार हाथ जमीन देखकर जीव रक्षा करते हुए चलना।
4. **आदाननिक्षेपण समिति :** वस्तु को उठाते समय, रखते समय देख शोधकर जीव रक्षा का ध्यान रखना।
5. **आलोकितपान-भोजन :** सूर्य प्रकाश में भोजन-पान ग्रहण करते समय देख और शोधकर भोजन करना।

सत्यव्रत की पाँच-भावनाएँ

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च।त.सू. 7/5

1. **क्रोध-प्रत्याख्यान** : क्रोध का त्याग करना।
2. **लोभ-प्रत्याख्यान** : लोभ का त्याग करना
3. **भीरुत्व-प्रत्याख्यान** : भय का त्याग करना।
4. **हास्य-प्रत्याख्यान** : हास्य (हँसना) का त्याग करना।
5. **अनुवीचि-भाषण** : शास्त्र की अनुकूल निर्दोष-वचन बोलना।

अचौर्यव्रत की पाँच-भावनाएँ

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाःपञ्च।
त.सू. 7/6

1. **शून्यागारवास** : पर्वत की गुफा, वृक्ष की कोटर आदि निर्जन स्थानों में रहना।
2. **विमोचितावास** : दूसरों के द्वारा छोड़े गए निर्जन व एकान्त स्थान में निवास करना।
3. **परोपरोधाकरण** : जहाँ स्वयं ठहरे हों वहाँ दूसरों को ठहरने से नहीं रोकना।
4. **भैक्ष्यशुद्धि** : चरणानुयोग के शास्त्र-अनुसार भिक्षा (आहारचर्या) की शुद्धि रखना।
5. **सधर्माविंसवाद** : सहधर्मी भाइयों से 'यह तेरा है, यह मेरा है' इत्यादि कलह रूप नहीं करना।

ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच-भावनाएँ

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरण वृष्येष्टरस स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ।त.सू. 7/7

1. **स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग :** स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं के सुनने का त्याग।
2. **तन्मनोहाराङ्गनिरीक्षण त्याग :** स्त्री के सुंदर अंगोपांगों को देखने का त्याग।
3. **पूर्वरतानुस्मरण त्याग :** पूर्व समय या अव्रत अवस्था में भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग।
4. **वृष्येष्टरस त्याग :** कामवर्धक, गरिष्ठ रसों का त्याग।
5. **स्वशरीर संस्कार त्याग :** अपने शरीर पर कामोद्दीपक संस्कार रूप सुन्दरता बढ़ाने का त्याग करना।

परिग्रह त्याग व्रत की पाँच-भावनाएँ

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ।त.सू. 7/8

पाँचों (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण) इन्द्रियों के इष्ट-विषयों में राग नहीं करना और अनिष्ट-विषयों में द्वेष नहीं करना।

सोलह-भावनाएँ

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुत प्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमितितीर्थ-करत्वस्य। त.सू. 6/24

1. **दर्शनविशुद्धि** : अरिहन्त-भगवान के द्वारा कहे गए वीतराग निर्ग्रन्थ रूप मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगादि सहित एवं पच्चीस मल दोष रहित रुचि या श्रद्धा का होना।
2. **विनयसम्पन्नता** : रत्नत्रय एवं रत्नत्रय के धारक आगम से चलने वाले साधुओं की अन्तरंग से आदर, सत्कार रूप विनय करना या नवदेवताओं की विनय करना।
3. **शील-व्रतेषु अनतिचार** : अहिंसा, सत्य आदि व्रतों का एवं व्रतों की रक्षा करने वाले शीलों का अतिचार रहित (निर्दोष) पालन करना।
4. **अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग** : निरन्तर सम्यग्ज्ञान में अपना उपयोग लगाना अर्थात् सदा सम्यग्ज्ञान के पठन-पाठन, लेखन आदि में संलग्न रहना।
5. **अभीक्ष्ण-संवेग** : पञ्च परिवर्तन रूप संसार के दुःखों से एवं दुःख प्राप्ति के कारणों से सदा भयभीत रहना, अथवा रत्नत्रय-जनित हर्ष का होना।
6. **शक्तितः त्याग** : निज शक्ति के अनुसार रस इत्यादिक का त्याग करना अथवा विधिपूर्वक दान देना।

7. **शक्तितः तप** : अपनी शक्ति के अनुसार जैन मार्गानुकूल तपस्या करना।
8. **साधु-समाधि** : तपस्वी मुनियों के तप में आने वाली विघ्न-बाधाओं को दूर कर उनके संयम की रक्षा करना।
9. **वैयावृत्यकरण** : गुणवान सच्चे साधुजनों की, हाथ, पैर इत्यादिक अंग दबाकर, साथ में विहार कर अथवा आहार, औषध, उपकरण और आवास आदि का दान देकर उनकी सेवा करना।
10. **अर्हद्-भक्ति** : विशुद्ध-भावों से गुणानुराग पूर्वक अ... भगवान का गुणगान करना।
11. **आचार्य-भक्ति** : विशुद्ध-भावों से गुणानुराग पूर्वक आचार्य परमेष्ठी का गुणगान करना।
12. **बहुश्रुत-भक्ति** : विशुद्ध-भावों से गुणानुरागपूर्वक पच्चीस गुणों (ग्यारह अंग, चौदह पूर्व) के धारी उपाध्याय परमेष्ठी का गुणगान करना।
13. **प्रवचन-भक्ति** : विशुद्ध-भावों से गुणानुराग पूर्वक शास्त्र का गुणगान करना।
14. **आवश्यक-अपरिहाणि** : सामायिक, स्तवन (स्तुति), वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यक कार्यों में कभी हानि न होने देना और प्रतिदिन नियत समय पर उनका अच्छी तरह से पालन करते रहना।
15. **मार्ग-प्रभावना** : सम्यग्ज्ञान के द्वारा, तप के द्वारा अथवा जिनेन्द्र भगवान की पूजा आदिक से जगत में जैन धर्म का प्रकाश फैलाना।
16. **प्रवचन-वत्सलत्व** : जैसे गाय को अपने बछड़े (बच्चे) से सहज स्नेह (प्रेम) होता है वैसे ही साधर्मी जनों को देखकर चित्त का प्रफुल्लित (प्रसन्न) हो जाना तथा यथायोग्य आदर सत्कार करना।

62 / 90

बारह भावनायें

1. **अनित्य-अनुप्रेक्षा** - यौवन, धन, गृह और परिजन आदिक मेघाकार व इन्द्र धनुष के समान परिवर्तनशील/अशाश्वत हैं ऐसा चिंतवन करना अनित्य-अनुप्रेक्षा है।
2. **अशरण-अनुप्रेक्षा** : इस संसार में प्राप्त हुए कोई भी समागम जीव को शरण नहीं। जैसे- सिंह के मुख को प्राप्त हुए हिरण को कोई बचाने में समर्थ नहीं, वैसे ही मृत्यु के आने पर सुर, असुर, विद्याधर, चक्रवर्ती, आदि को भी कोई भी मणि-मन्त्र-तंत्रादि विविध उपाय बचाने में समर्थ नहीं ऐसा चिंतवन करना अशरण-अनुप्रेक्षा है।
3. **संसार-अनुप्रेक्षा** : यह पञ्च परावर्तन रूप संसार जिसमें शुभाशुभ कर्मों के फलों को भोगते हुए संसारी जीव चतुर्गति में भ्रमण करते हैं; दुःखों से भरा हुआ है, इसमें वास्तविक सुख किञ्चित मात्र भी नहीं, इसमें जो झूठा क्षणिक-सुख नजर आता है, वह तलवार की धार पर लगे हुए मीठे को अपनी जिह्वा से चखने के समान दुःखदायी है ऐसा चिंतवन करना संसार-अनुप्रेक्षा है।
4. **एकत्व-अनुप्रेक्षा** : जन्म-मरण, सुख-दुःख आदिक अवस्थाओं को यह जीव अकेला ही भोगता है, माता-पिता, भाई, बन्धु आदिक कोई भी इस जीव के वास्तविक साथी नहीं, सभी स्वार्थ का अपनापन दिखलाने वाले हैं, ऐसा मन में बार-बार विचार लाना एकत्व-अनुप्रेक्षा है।
5. **अन्यत्व-अनुप्रेक्षा** : आत्मा से जब शरीर भी; मिले हुए जल और दूध के समान भिन्न स्वरूप वाला है तब धन, मकान, वैभव और परिजन आदि तो मेरी इस आत्मा से अत्यन्त भिन्न हैं; वे मेरे कैसे हो सकते हैं ऐसा बार-बार चिंतवन करना अन्यत्व-अनुप्रेक्षा है।
6. **अशुचि-अनुप्रेक्षा** : यह शरीर खून, मांस आदिक अपवित्र

धातुओं से बना हुआ है, इससे घिनावने नव मल द्वार बहते रहते हैं एवं इस शरीर को कितना भी खिलाने, पिलाने और सजाने पर यह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता ऐसे अपवित्र अशुचिमय शरीर में रति नहीं करने रूप जो चिंतवन है वह अशुचि-अनुप्रेक्षा है।

7. **आस्रव-अनुप्रेक्षा** : मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योगों से नवीन कर्मों का आस्रव होता है और आस्रव ही दुःख का मूल है, इस प्रकार आस्रव से दूर होने के सम्बन्ध में चिंतवन करना आस्रव-अनुप्रेक्षा है।
8. **संवर-अनुप्रेक्षा** : सम्यक्त्व पूर्वक धार्मिक अनुष्ठानों से मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के क्रमशः अभाव या दूर हो जाने से सभी कर्मों का आत्मा में आना रुक जाना संवर है, ऐसी पुनःपुनः भावना भाना संवर-अनुप्रेक्षा है।
9. **निर्जरा-अनुप्रेक्षा** : जो कर्म स्वयं अपनी स्थिति आने पर फल देकर खिर जाता है (निर्जरित हो जाता है) उस निर्जरा से मोक्ष नहीं मिलता और पुरुषार्थ पूर्वक जो बारह तपों से कर्मनिर्जरा की जाती है उसी से शिव (मोक्ष) सुख का लाभ होता है ऐसी भावना करना निर्जरा-अनुप्रेक्षा है।
10. **लोकानुप्रेक्षा** : जो यह षड् द्रव्यमय 343 घन राजू प्रमाण लोक है इसे किसी ने बनाया नहीं, न इसे कोई धारण करता है, और न ही इसका कोई नाश करता है । ऐसे अनादि-अनिधन इस लोक में संसारी जीवात्माएँ अनन्त बार जन्म-मरण करती रहती हैं इस प्रकार चिंतवन करना लोकानुप्रेक्षा है।
11. **बोधि-दुर्लभ-अनुप्रेक्षा** : इस जीव को अनेक बार राजा, अहमिन्द्र जैसे पद प्राप्त हो जाते हैं लेकिन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति इसे अति दुर्लभ है एवं इस जीव को ऐसे रत्नत्रय की एक बार भी प्राप्ति होने के उपरान्त मोक्ष की प्राप्ति

शीघ्रातिशीघ्र हो जाती है, ऐसी उत्तम-भावना भाना बोधि-दुर्लभ-अनुप्रेक्षा है।

12. **धर्मानुप्रेक्षा :** परमार्थ रूप से रत्नत्रय धर्म एवं '**अहिंसा परमो धर्मः**' ही भव्य आत्माओं का कल्याण करने वाला है। इसे अपने हृदय में धारण करने से सारे संकट दूर हो जाते हैं एवं अचल मोक्ष सुख प्राप्त होता है, ऐसा बार-बार चिंतवन करना धर्म-अनुप्रेक्षा है।

सात-भावनाएँ

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्॥
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे।
संपद्यंतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः॥ - समाधिभक्ति-2

1. शास्त्रों का अभ्यास करना। 2. जिनेन्द्र भगवान की स्तुति करना। 3. सभी आर्य पुरुषों की संगति करना। 4. सद्वृत्ति (अच्छे आचरण) वालों का गुण-गान एवं उनकी कथा सुनना। 5. दोषों को कहने में मौन रहना। 6. सब जगह प्रिय, और हित रूपी वचन बोलना और 7. अपनी आत्म-तत्त्व की भावना भाना।

हे प्रभो! जब तक मोक्ष न मिले तब तक ये सात भावनाएँ हम हमेशा भाते रहें अर्थात् चिन्तवन करते रहें।

चार-भावनाएँ

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव॥ - द्वात्रिंशतिका-1

1. **सत्वेषु मैत्रीं** - सदा सब जीवों पर मैत्री-भाव हो।

2. **गुणिषु प्रमोदं** - गुणी-जनों में आल्हाद या स्नेह-भाव हो।
3. **क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्** - दुःखी जीवों पर करुणा-भाव हो।
4. **माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ** - विपरीत-प्रवृत्ति-वालों पर माध्यस्थ-भाव रहे।

तीन भावनाएँ

तत्त्व श्रद्धान रूप **सम्यग्दर्शन**, संशयादि दोष रहित **सम्यग्ज्ञान** और अहिंसादि व्रत पालन रूप **सम्यक्चारित्र** इन रत्नत्रय की प्राप्ति रूप तीन भावनाएँ कहलाती हैं।

दो भावनायें

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम्। - त.सू. 7/12

1. संवेग-भावना - ''संसारान् दुःखान् नित्य भीरुता संवेगः''। संसार के दुःखों से अर्थात् दुःखों के कारण रूप पापों से हमेशा डरते रहने का नाम संवेग-भावना है।

2. वैराग्य-भावना :- इस नश्वर अशुचि-मय शरीर के स्वभाव का चिंतवन करते हुए इससे निर्ममत्व होना वैराग्य-भावना है।

एक-भावना

एक मात्र आत्मा के सम्बन्ध में चिंतन करना। जैसे-

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तं पि॥

- समयसार 46

अर्थ :- मैं एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञान मय स्वरूपी हूँ, सदा अरूपी हूँ, कुछ भी परमाणु मात्र परद्रव्य मेरा नहीं है।

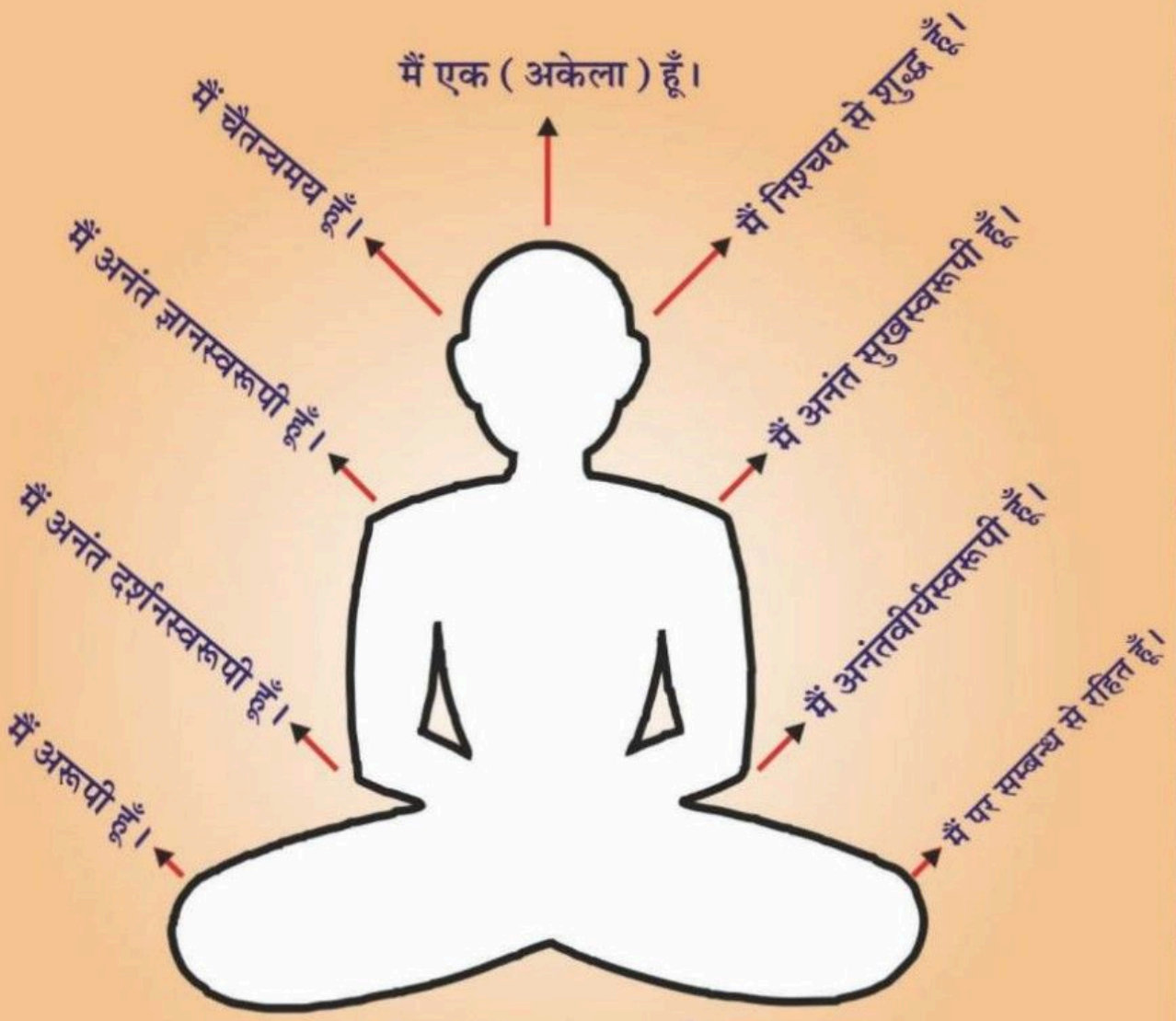
मैं एक (अकेला) हूँ।
मैं चैतन्यमय हूँ।
मैं निश्चय से शुद्ध हूँ।
मैं अनंत ज्ञानस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत सुखस्वरूपी हूँ।
मैं अनंत दर्शनस्वरूपी हूँ।
मैं अनंतवीर्यस्वरूपी हूँ।
मैं अरूपी हूँ।
मैं पर सम्बन्ध से रहित हूँ।
मैं आनंद का भण्डार हूँ।

तत्त्वधारणा

सोलह भावना एवं सम्यक् ध्यान शतक
ज्ञानवर्धन प्रतियोगिता
भाद्रपद माह 2022
तीर्थोदय काव्य एवं सम्यक् ध्यान शतक का स्वाध्याय
सोलहकारण पर्व में करें विशेष धर्मध्यान एवं
जीतें आकर्षक पुरूस्कार ...बनें प्रतियोगिता के विजेता
यह तीर्थोदय काव्य एवं सम्यक् ध्यान शतक सिद्धांत भूषण विशेष
पदवी हेतु स्वीकृत किया गया है ..इस कोर्स को अवश्य करें
प्रतियोगिता में भाग लेने हेतु 9174843674